ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(11): 537-541
www.allresearchjournal.com
Received: 20-09-2017
Accepted: 25-10-2017

डॉ. राजेश्वर प्रसाद सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, धर्म समाज संस्कृत महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. राजेश्वर प्रसाद सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, धर्म समाज संस्कृत महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत

मैला आँचलः राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. राजेश्वर प्रसाद सिंह

प्रस्तावना

फणीश्वरनाथ 'रेणु' और राजनीति में आजीवन अटूट सम्बन्ध था भले ही 1952 से उनका सम्बन्ध राजनीतिक पार्टी से टूट गया था। राजनीति से वे अपना सम्बन्ध 'दाल–भात' की तरह मानते थे।[1] जैसे दाल–भात शरीर के लिए पोषक तत्त्व है वैसे ही राजनीति रेणुजी के साहित्य–सृजन के लिए। राजनीति के द्वारा ही उनका जुड़ाव किसान–मजदूरों की मानसिकता से हुआ, उनके हर आन्दोलन और ऐक्शन में इन्हें इनवाल्व्ड होने का मौका मिला।[2] यहीं रेणुजी ने महसूस किया कि ''हमारे लच्छेदार भाषणों से ज्यादा प्रभाव उस सांस्कृतिक चेतना का होता है, जो उन्हें मुसीबतों में भी गाते रहने के लिए मजबूर किये रहती है।''[3] उन्होंने राजनीतिक पार्टियों को अपनी–अपनी स्वार्थ–सिद्धि के लिए भोले–भाले किसान–मजदूरों को जमींदार और सरकार के सामने दावँ पर लगाते देखा। 'मैला आँचल' ही नहीं, रेणु का अधिकतर साहित्य इन्हीं वेदनाओं की व्याकुल अभिव्यक्ति है।

राजनीति रेणुजी के संस्कार में पूरी तरह ढल चुकी थी। इनके जन्म के पहले से ही परिवार में राजनीतिक चेतना व्याप्त हो चुकी थी। पिताजी कांग्रेस के मेम्बर थे, वे तरह–तरह की पत्र–पत्रिकाएँ मँगाया करते थे। रेणुजी बचपन में उनका पारायण करते थे। 'चाँद' के फाँसी अंक, 'हिन्दू पंच' के बलिदान अंक और सुन्दरलाल की पुस्तक 'भारत में अंग्रेजीराज' के लिए इनके घर पर पुलिस का छापा भी पड़ चुका था। 'बोलशेविक रूस' नामक पुस्तक, लेनिन की पार्टी और उनकी कहानियाँ पढ़कर रेणु का संवेदनशील हृदय रोमांचित हो जाता था। 1938 में सोनुपर में बिहार सोशलिस्ट पार्टी द्वारा 'समरस्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' का आयोजन किया गया था। जयप्रकाश नारायण इस स्कूल के प्रिंसिपल थे तथा शिक्षण–शिविर में कमला देवी चटट्ोपाध्याय, मीनू मसानी, अच्युत पटवर्द्धन, नरेन्द्रदेव, मेहर अली, अशोक मेहता वगैरह का व्याख्यान होता था। जवानी की दहलीज पर खड़ा रेणु इस शिविर में सम्मिलित नहीं हो सका था, किन्तु श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा सम्पादित साप्ताहिक 'जनता' पत्रिका पढ़कर इसमें शामिल होने का आनन्द वह ले रहा था। उनके शब्दों में ''इसका भी मेरे जैसे लोगों पर अनुकूल प्रभाव पड़ा था। यानी समाजवाद और बिहार सोशलिस्ट पार्टी के प्रति अधिक आस्थावान् हो गया था.... मैं उसमें चाहकर भी सम्मिलित नहीं हो सका था। किन्तु बेनीपुरी के सम्पादन और लेखन की कृपा से दूर रहकर भी इसमें सम्मिलित होने जैसा लाभ हुआ था।''[4] रेणु सोशलिस्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य के रूप में राजनीति में आते हैं, जनता के बीच जाते हैं, उनकी दयनीय दशा की आन्तरिक पड़ताल करते हैं और देश के आजाद होने के कुछ ही वर्षों बाद 1952 में सोशलिस्ट पार्टी से उनका मोहभंग हो जाता है। 'मैला आँचल' का रचनाकाल उनके इस राजनीतिक पार्टी से मोहभंग का काल है।

आलोच्य उपन्यास में निम्नलिखित प्रमुख राजनीतिक परिप्रेक्ष्यों की अभिव्यक्ति हुई है–

1. 1942 के आन्दोलन की संस्मरणात्मक या फ्लैश बैक अभिव्यक्ति।
2. 1946 की अन्तरिम सरकार और उसकी योजनाएँ एवं तज्जनित राजनीतिक दावँ–पेंच।
3. 1947 में स्वतंत्रता–प्राप्ति और देश–विभाजन।
4. विभाजन एवं विस्थापना के दौरान साम्प्रदायिक दंगे, हत्या, बलात्कार, लूटपाट और आगजनी जैसी घटनाएँ ।
5. गाँधी की नोआखाली यात्रा और शांति के प्रयास।
6. 31 जनवरी 1948 को गाँधी की हत्या।
7. राणाशाही के विरोध में 'नेपाल राष्ट्रीय कांग्रेस' के गठन की सूचना।

इस तरह 'मैला आँचल' एक नये प्रतिपाद्य, नयी शिल्प–संरचना और नये वस्तु–विन्यास के साथ हिन्दी उपन्यास जगत् में अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है। वस्तुतः यह न तो ऐतिहासिक उपन्यास है और न राजनीतिक ही, न तो धार्मिक उपन्यास है और न मनोवैज्ञानिक ही, किन्तु उपर्युक्त तमाम औपन्यासिक विधाओं के तत्त्वों से सम्पुष्ट यह महाकाव्यात्मक सामाजिक उपन्यास है। यहाँ एक वैज्ञानिक चरित्र की दृढ़ दिव्य आत्म–ज्योति अन्ध–परम्पराओं, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और प्राकृत जीवन के घेरे को बेधकर ज्योतिर्मय पथ पर आरूढ़ होने का संकल्प लेती है। यहाँ निराश, हताश, निर्बल, मजबूर, गरीब, दलित और शोषित जीवन आत्महन्ता नहीं, आस्थावादी है। गाँव के भोले–भाले, सरल–कुटिल, गँवार और भुच्चड़ लोग बाँसवाड़ियों, अमराइयों, झाड़ियों, जंगलों और नदी–नालों के टेढ़े–मेढ़े कछारों में ही नहीं विचरते होते, अपितु ब्रिटेन, जापान और जर्मनी की खबरों से आन्दोलित भी होते हैं और तेजी से बदलती हुई दुनिया को आश्चर्य और आशंका की दृष्टि से भी देखते हैं।

उपन्यास का आरम्भ किसी स्वस्थ राजनीतिक विचारधारा के प्रचार–प्रसार या प्रशिक्षण से नहीं होता है, बल्कि अफवाहों के उड़ते गुब्बारों के बीच होता है और वह भी एक ऐसे गाँव के जीवन से जहाँ 1942 के जन–आन्दोलन की लहर भी नहीं पहुँच पायी थी और न फौजियों का कोई उत्पात ही हुआ था। अलबत्ता, जिले भर की घटनाओं की खबर अफवाहों के रूप में यहाँ तक जरूर पहुँची थी। पूर्णिया जिले के इस गाँव–मेरीगंज का हृदय अन्धविश्वासों का रक्तकोष है जिससे जुड़े नसों में अफवाहों की धड़कनें स्पष्ट सुनायी देती है। उपन्यास का अन्त भी अन्धविश्वासों के दलदल में फँसा 'कलीमुद्दींपुर घाट पर चेथरिया–पीर में एक चीथड़ा और लटका दिया गया है'[5], से होता है। ऐसे अन्धविश्वासों और अफवाहों के बीच बनती–बिगड़ती भारतीय राजनीति की झलक इस गाँव के परिवेश में देखी जा सकती है। राष्ट्रीय–प्रान्तीय या जिला स्तर की बात तो दूर यहाँ प्रखण्ड स्तर का भी कोई नेता नहीं जन्मा है, बालदेव और बावनदास जैसे लोग भी तो इस गाँव के लिए बाहरी ही हैं जो यहाँ सेवा–भाव से आये हैं। डाक्टर प्रशान्त, जो यहाँ के नवस्थापित मलेरिया सेन्टर में कार्य–भार सँभालते हैं, वे भी बाहरी ही हैं, जन–सेवा और अनुसंधान में लीन रहते हैं।

राजनीति से सर्वथा दूर यह इनोसेंट गाँव जब 1946 में बनी अन्तरिम सरकार और अन्य राजनीतिक दलों का, अपनी ओर बढ़े हाथों का संस्पर्श करता है तब उसकी सुषुप्त चेतना को सहसा एक झटका लगता है, वह उठकर बार–बार खड़ा होने की चेष्टा करता है और सर्फद टोपीवाले, लाल टोपीवाले और काली टोपीवाले को ललक भरी दृष्टि से देखता है, उसकी ओर लपकता है, किन्तु उन्हें पकड़ लेने की चेष्टा में बिखर–बिखरकर रह जाता है। आखिरकार, बावनदास की व्यथा बालदेव के सामने फूट पड़ती है–'सोसलिस? सोसलिस? क्या कहेगा सोसलिस हमको?.... सब पाटी समान। उस पाटी में भी जितने बड़े लोग हैं, मंतरी बनने के लिए मारकर रहे हैं। सब मेले–मंतरी होना चाहते हैं, बालदेव! देस का काम, गरीब का काम, चाहे मजूरों का काम, जो भी करते हैं, एक ही लोभ से।''[6] अर्थात् राजनीति अब देशोद्धार और राष्ट्र–निर्माण का माध्यम नहीं, वह व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति का साधन भर बनकर रह गयी है।

बावनदास, चुन्नी गुसाईं और बालदेव–तीनों ने एक ही दिन इस संसार के माया–मोह को त्यागकर सुराजी में नाम लिखाया था। ये तीनों चरित्र कांग्रेस की तीन परतों को खोलते हैं। जब देश में सोशलिस्ट पार्टी की आँधी आयी तब वह चुन्नी गोसाईं को, जिसके लिए चर्खा–कर्घा, झंडा–तिरंगा और खद्दर को छोड़कर सभी चीजें मिथ्या हैं, अपने प्रवाह में बहा ले जाती है। बालदेव को आश्चर्य होता है–''....विदेशी कपड़ा बैकाठ....नीमक कानून.... जेल। गाँजा–दारू छोड़िए प्यारे भाइयो....जेल। व्यक्तिगत सत्याग्रह....जेल। 1942....जेल। .....सब मिलकर दस बार जेल–यात्रा कर चुका है चुन्नी गुसाईं। और वह सोसलिस्ट पाटी में चला गया।''[7] 1934 ई. में जब जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में अखिल भारतीय कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई तब देश के कई असंतुष्ट नवयुवक कांग्रेस छोड़कर इस पार्टी में शामिल होने लगे थे। बिहार में तो इससे पहले ही पटना कैम्प जेल में बिहार सोशलिस्ट पार्टी का जन्म हो चुका था।

बावनदास का परिचय देते हुए उपन्यासकार ने लिखा है–''पूर्वजन्म का फल अथवा सिरजनहार की मर्जी! प्रकृति की भूल अथवा थायराएड, थायमस और प्युटिटिरी ग्लैंड्स के हेर–फेर! डेढ़ हाथ की ऊँचाई! साँवला रंग, मोटे होंठ, अचरज में डाल देनेवाली दाढ़ी और चौंका देनेवाली मोटी–भोंड़ी आवाज। ऊँचाई के हिसाब से आवाज दसगुना भारी। अजीब चाल, मानो लुढ़क रहा हो। अज्ञात कुलशील। जन्मजात साधू। जिस ओर होकर गुजरता, लोगों की निगाहें बरबस अटक जातीं। फिर ताज्जुब की हँसी–मुस्कुराहट। पीछे–पीछे बच्चों का हुजूम, तमाशा, कुत्ते झूँकते, इंसान हँसते। गर्भवती औरतें छिप जातीं अथवा छिपा दी जातीं।''[8] यही बावनदास जब चंदनपट्टी की सभा में तिवारीजी का भाषण और तनुकलाल का मार्मिक गीत सुनता है तब निश्चय कर लेता है–''क्या होगा यह सरीर रखकर? चढ़ा दो गाँधी बाबा के चरण में, भारथमाता की खातिर!''[9]

यह बावनदास आजकल उदास रहता है और कहता है–''लेकिन भारथमाता अब भी रो रही है बालदेव!'' फिर कहता है–''बिलैती कपड़ा के पिकेटिंग के जमाने में चानमल–सागरमल के गोला पर पिकेटिंग के दिन क्या हुआ था, सो याद है तुमकों बालदेव? चानमल मड़बाड़ी के बेटा सागरमल ने अपने हाथों सभी भोलटियरों को पीटा था; जेहल में भोलटियरों को रखने के लिए सरकार को खर्चा दिया था। वही सागरमल आज नरपत नगर थाना कांग्रेस का सभापति है। और सुनोगे?.... दुलारचंद कापरा को जानते हो न? वह जुआ कंपनीवाला, एक बार नेपाली लड़कियों को भागकर लाते समय जो जोगबनी में पकड़ा गया था। वह कटहा थाना का सिकरेटरी है। .....भारथमाता और भी, जार–बेजार रो रही हैं।''[10]

देश आजाद क्या हुआ, उसके दो टुकड़े हो गये–भारत और पाकिस्तान। मानवता को तार–तार करने वाले और देश के दुश्मन कांग्रेस के अधिकारी बन जाते हैं। कभी का जुआ कंपनी चलाने वाला कापरा कांग्रेस का थाना संक्रेटरी बनकर भारत–पाकिस्तान के बीच तस्करी करने लगा है। अहिंसाव्रतधारी अकेला बावनदास उसकी गाड़ियों के जत्थे को रोक नहीं पाता है, बल्कि चक्कों के नीचे दबाकर उसे मार दिया जाता है। ''बावन ने दो आजाद देशों की, हिंदुस्तान और पाकिस्तान की–ईमानदारी को, इंसानियत को, बस दो डेग में ही नाप लिया!''[11] उधर महात्मा गाँधी सम्प्रदायवादियों की गोलियों के शिकार बन चुके हैं और इधर बावनदास तस्करों के चोरमार्ग में अपनी बलि दे देता है। समूचे उपन्यास में बावनदास अपनी उपस्थिति से गाँधी के चरित्रादर्श को बड़ी मार्मिकता से प्रतिष्ठित करने में सफल हुआ है। वह गाँधी के व्यक्तित्व का पूरक है। एक–दो मानवीय कमजोरियों को छोड़ दें तो हम डेढ़ हाथ के बावनदास को ही सुराजियों के शिखर पर बैठा हुआ पाते हैं। वही सुराजी में अपना नाम लिखाते वक्त लिये गये संकल्प को पूरा करता है। दूर–दूर तक उसके समान कोई दूसरा गाँधी टोपीवाला नेता दिखायी नहीं देता है।

बालदेव अहिंसाव्रतधारी है, लोग उसके अहिंसावाद का माखौल उड़ाते हैं, किन्तु वह इसकी परवाह नहीं करता है। वह हिंसावाद को स्वीकार नहीं कर सकता, उसका चेला कालीचरन हिंसावाद मानने लगा है, लेकिन इसके अहिंसावाद से न तो लछमी नागा की प्रताड़ना से बच पाती है और न रामदास को महंथी ही मिल पाती है। यही नहीं, वह तो अहिंसा के माध्यम से लोगों को हैजे का टीका लगवाने में भी सफल नहीं हो पाता है, खुद हैजे से डरता भी है। उसकी अहिंसा गाँववासी और बाहरी के भेद–भाव

को भी नहीं मिटा पाती है; फलतः गाँववासी और संथालों में भीषण मारकाट मचती है। बालदेव की अहिंसा जीवन के भँवर जाल में फँस जाती है। गाँव के लोग, जो कभी बालदेवजी को गियानी आदमी मानते थे, उनके अंडोलन, अनसन और हिंसाबाद शब्द से ज्ञान झरता था, वही आज उसे सनकी मान रहे हैं। ''बालदेवजी फिर सनके हैं क्या? हाथ में झंडा को इस तरह भाँजते हैं मानो गाटसाहेब रेलगाड़ी को झंडी दिखला रहे हों।''[12]

बालदेव सुराजी है, कांग्रेस का स्वयंसेवक है, लेकिन वह जात–पाँत, बाहरी–भीतरी और दमित काम–भावना की ग्रंथियों से मुक्त नहीं हो सका है। यादव–समाज के जो लोग देशद्रोही करार कर उसे बाँधकर डिसट्रिक्ट बोर्ड के अधिकारियों के पास ले जाते हैं उनके ही जातिवादी चक्र में वह फँस जाता है। वह खेलावन सिंह यादव के घर खुद ही नहीं रहता, अपितु अपनी मौसी को भी रख लेता है। वह यह भी समझने का प्रयास नहीं करता है कि जिस जातिवाद और भाई–भतीजावाद का हवाला देकर उसे रखा गया है वह गाँधीवादी आदर्श के अनुकूल नहीं है। यही कारण है कि अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति में सहायक न पाकर एक दिन खेलावन सिंह यादव उसे इशारे–इशारे में घर खाली कर देने के लिए कह देते है। वह दूसरी जगह रहने लगता है, ऊपर से कभी भी जातिवादी न दीखने वाले इस चरित्र का पोल तब खुलता है जब वह लछमी के अहिंसक विरोध के कारण बावनदास के नाम गाँधीवादी की लिखी चिट्ठियों को जला पाने में सफल नहीं होता है। वह ग्लानिवश लछमी का सामना नहीं कर पाता है, वह मसहरी में छिप जाता है और सोचता है–''वह अपने गाँव में रहेगा, अपने समाज में, अपनी जाति में रहेगा। ....जाति बहुत बड़ी चीज है। .....जाति की बात ऐसी है कि सभी बड़े–बड़े लीडर अपनी–अपनी जाति की पाटी में हैं। –यह तो राजनीति है! लछमी क्या समझेगी?''[13] यह भारतीय राजनीति में जातिवाद पर करारा व्यंग्य है।

बालदेव के अन्तर्मन में बाहरी और भीतरी का द्वन्द्व अन्तःसलिला के जल की भाँति छिपा हुआ है जो अवसर पाकर यदा–कदा प्रकट हुआ है। मठ पर गाँव–भर के मुखिया लोगों की पंचायत बैठी है। मुख्य बात से हटकर तू–तू मैं–मैं होने लगती है। आखिरकार बालदेवजी कहते हैं–''आप लोग अपने गाँव में सेवा नहीं करने दीजिएगा, हम चन्ननपटी चले जाएँगे।''[14] तब सिंघजी ने बिगड़ती हुई स्थिति सँभाल ली थी–''बालदेव! तुम यहाँ से चले जाओगे तो यह मेरीगंज गाँव का दुरभाग होगा, सरम की बात होगी। .....तुम लोगों का काम है, गाँव में मेल–मिलाप बढ़ाना, गाँव की उन्नति करना। इसमें जो बाधा डालता है, वह अधर्मी है। तुम लोग देश के सेवक हो।''[15] बालदेवजी जैसा हीरा आदमी गाँव को मिला है, किन्तु हीरा को कितने लोग पहचानते हैं? उसकी कीमत लगाते हैं? इसी बालदेव जैसे बाहरी हीरा–तत्त्व को आखिरकार गाँव नहीं पचा पाता है और उगलकर बाहर हो जाने को मजबूर कर देता है। खेलावन सिंह यादव कहते हैं–''बाहरी आदमी का परिवार में रहना अच्छा नहीं''[16] और वह मठ पर रहने लगता है, किन्तु वहाँ भी नहीं रच–पच पाता है। फिर तो मठ से निकलकर अमराई में लछमी के साथ रहने लगता है। लेकिन यहाँ भी परिस्थितियाँ ऐसी बनती हैं कि वह अपने गाँव को लौट जाना चाहता है, आखिर अपना गाँव अपना ही होता है, अपना समाज अपना ही होता है। इसी अपने–पराये और बाहरी–भीतरी के द्वन्द्व से जब बालदेव जैसा सुराजी नहीं उबर पाता है जिसका न तो अपना घर–बार है, न परिवार है तब कोई नेता–चाहे वह कांग्रेसी हो या सोशलिस्ट या कम्यूनिस्ट–जिसका भरा–पूरा परिवार है, वह कैसे उबर सकता है? इस आदिम कुंठा से वह अपने–पराये, बाहरी–भीतरी, भाई–भतीजा का राजनीतिक खेल रचता है और देश–सेवा का कार्य गौण हो जाता है।

स्पष्ट है कि चुन्नी गुसाईं, बावनदास और बालदेव जैसे लोगों को राजनीति में आगमन किसी विचार या जीवन–दर्शन के बोध से नहीं होता है, वे भावना के आवेग में किसी राजनीतिक पार्टी से जुड़ते हैं। इन तीनों का कांग्रेस में आगमन भावनावश ही होता है। यही कारण है कि चुन्नी गुसाईं, जब आगे चलकर दूसरी भावना की उत्ताल और उत्तप्त तरंगों में बहता है तब कांग्रेस को छोड़ सोशलिस्ट पार्टी के किनारे जा लगता है। बावनदास छोटे कार्यकर्त्ता से लेकर गाँधी जैसे महापुरुष का साहचर्य पाकर अपनी भावना को विचार में बदल लेता है। इसलिए वह गाँधीवादी जीवन–मूल्य की रक्षा करते हुए शहीद हो जाता है। बालदेव चुन्नी गुसाईं और बावनदास से भिन्न धरातल पर जीता है, वह न तो गाँधी को पकड़ पाता है और न लछमी को ही छोड़ पाता है। यह अपनी दुर्बलता को परास्त नहीं कर पाता है, शुरू का उसका तेजस्वी व्यक्तित्व धीरे–धीरे कातर होता गया है।

हम देखते हैं कि गाँधी के विचारों के प्रति जितने स्वयंसेवक आस्थावान् थे, वे या तो मर जाते हैं या मार दिये जाते हैं या पार्टी के कछार पर पड़े–पड़े महात्मा गाँधी के नयकारे लगाते होते हैं या मठ–मंदिरों का आश्रय ले लेते हैं या जमींदारों, तहसीलदारों, तस्करों, उद्योगपतियों के चक्रव्यूह का भेदन नहीं कर पाने के कारण जेल की चक्की चलाते होते हैं और कांग्रेस पर प्रतिगामी शक्तियों का कब्जा हो जाता है। यही कारण है कि सरकार जब जमींदारी प्रथा समाप्त करने की घोषणा करती है तब वह जमीनी स्तर पर सफल नहीं हो पाती है। नये और पुराने तहसीलदारों की व्यूह–रचना को गरीब और अशिक्षित किसान–मजदूर समझ नहीं पाते हैं। वे सभी जमीन बन्दोबस्ती के लिए दफा 40 में दरखास्त देते हैं और उसमें होने वाले खर्च के लिए अपने मवेशी, फसल आदि बेचने लगते हैं, सूद पर रुपया कर्ज लेने लगते हैं। ''गाय, बैल, बाछा–बाछी और भैंस के पाड़ा की बिक्री धड़ाधड़ हो रही है। दूने सूद पर भी रुपया कर्ज लेकर जमीन मिल जाए तो फायदा ही है। पाट का भाव पन्द्रह रुपया है; ऊपर पचास भी जा सकता है। सौ भी हो सकता है। धान सोने के भाव बिक रहा है। जमीन! जिसके पास जमीन नहीं, वह आदमी नहीं, जानवर हैं। जानवर घास खाता है, लेकिन आदमी तो घास खाकर नहीं रह सकता।''[17] लेकिन कांग्रेस और सोशलिस्ट की बातें धरी की धरी रह जाती हैं, दरखास्त नामंजूर हो जाती है। किसान–मजदूर संघर्ष पर उतारू हो जाते हैं। उधर संथाल आदिवासियों में भी अजब का उत्साह है–''जमींदारी प्रथा खतम हो गयी। अब जमींदारी जमीन से बेदखल कर दिया। जो जोतेगा जमीन उसकी है। जो जितना जोत सको, जिसकी जमीन मिले जोतो, बोओ, काटो। अब बाँटने का भी झंझट नहीं।''[18] स्थिति की गम्भीरता को भाँप कर तहसीलदारों ने अपना पैंतरा बदला और भीतरी–बाहरी को मामला उठाकर भोले–भाले किसान–मजदूरों को अपने पक्ष में और संथालियों के विरोध में तैयार कर लिया। संथाली लोग तहसीलदास विश्वनाथ प्रसाद की जमीन पर धावा बोल देते हैं। दोनों तरफ से मार–काट मच जाती है। इधर के लोग भाला, बर्छी, लाठी से प्रहार करते हैं, संथाली मर्द, औरत, बच्चे, बूढ़े तीर चलाते हैं। तहसीलदार के लगभग दो सौ आदमी हैं जबकि दो दर्जन संथाल और डेढ़ दर्जन संथालिनें हैं। इस संघर्ष में ''संथाल टोली के चार आदमी ठंडे हुए, सात घायल हुए और एक लड़के की हालत खराब है। संथालिनें दुहरे दर्द से कराह रही हैं। तहसीलदार की हँसेरी में दस गुंडे ठंडे हुए, बारह बुरी तरह जख्मी हुए और तीस आदमी को मामूली घाव है।

संथाल टोली को लूट लिया गया। तहसीलदार हरगौरी की हालत बहुत खराब है, शायद नहीं बचेंगे।''[19] फिर अस्पताल, पुलिस, गिरफ्तारी, केस–मुकदमा का दौर शुरू होता है और जमीन जहाँ थी वहीं रह जाती हैं। अलबत्ता, देशी किसान–मजदूर और आदिवासी–सभी तबाह हो जाते हैं। वस्तुतः इन सबके पीछे सभी पार्टियों की गंदी राजनीति और सरकार का अस्पष्ट एवं त्रुटिपूर्ण न्याय–विधान है। ....किन्तु, लोकतंत्र की राजनीति तो ऐसी ही घटनाओं की संजीवनी से जिन्दा है।

अपने राजनीतिक जीवन की व्यस्तता और नारी के मोहक रूप से दूर रहने वाला नेता, कार्यकर्त्ता कई बार दमित यौन–भावना का शिकार जन जाता है; किसी नारी के सम्पर्क में आते ही उसकी दमित इच्छाएँ स्फुरित होने लगती हैं। यशपाल का दादा कामरेड हो या अज्ञेय का शेखर या रेणु का बालदेव, बावनदास इत्यादि–सभी इस धरातल पर अचल–अडिग नहीं रह पाते हैं। अखाड़ेबाजे कालीचरन, जो कि सोशलिस्ट पार्टी का मेम्बर बन गया है, चरखा, सेंटर की मास्टरनी मंगलादेवी पर आसक्त हो जाता है। करघा–मास्टर टुनटुनजी तो पहले से ही मंगलादेवी पर डोरे डाले हुए हैं। बालदेव जब भी लछमी से मिलता है उसकी देह की सुगंध से वह आत्मविभोर हो जाता है। वह लछमी की ओर खींचता चला जाता है और अन्ततः उसके साथ रहने भी लगता है। यदि कोई पुरुष लछमी से मिलने भी आता है तो वह ईर्ष्या से जल–भुन जाता है।

बावनदास श्रीमती तारावती देवी में भगवती दुर्गा का तेज देखता था, किन्तु जब उन्हें वह पलँग पर अलसाई सोयी देखता है, उनके बिखरे हुए घुँघराले बाल, छाती पर से सरकी हुई साड़ी और खुली हुई अँगिया देखता है तब ''वह इस औरत के कपड़े को फाड़कर चित्थी–चित्थी कर देना चाहता है। वह अपने तेज नाखूनों से उसके देह को चीर–फाड़ डालेगा। वह एक चीख सुनना चाहता है। वह अपने जबड़ों से पकड़कर उसे झकाझोरेगा। वह मार डालेगा इस जवान गोरी औरत को। वह खून करेगा।''[20] इस घटना के बाद बावनदास ने काम–भावना के ज्वार से तो अपने को बचा लिया, किन्तु बालदेव, कालीचरन जैसे नेता इससे अपने को उबार नहीं पाये। देश की आजादी अब पुरानी हो चली है, किन्तु कुछ नेतागण अभी भी यौन–ग्रंथि से मुक्त नहीं हो सके हैं।

जैसे कांग्रेस पार्टी आपस की गुटबाजियों में उलझ गयी है, सेठ–साहूकारों, जमींदारों और पूँजीपतियों के हाथों का खिलौना बन गयी है; ऐसे लोग अब प्रखण्ड और जिला स्तर से लेकर ऊपर तक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सेक्रेटरी, ट्रेजरर इत्यादि पदों को हथिया लेने में सफल हो चुके हैं; वैसे ही सोशलिस्ट के हालात हैं। यहाँ भी धरमपुरीजी और किसनकांतजी की खेमेबाजी है। एक तरफ कालीचरन तो दूसरी तरफ वासुदेव, बीच में सुमिरतदास जैसे लोगों की चाँदी कट रही है। व्यक्तित्व के बाहर और भीतर की संरचना विषमता के कारण तार–तार हो गयी है। 'डूब कर पानी पियो, एकादसी का बाप भी न जाने' की कहावत चरितार्थ हो रही है। नेता चन्दे के पैसे से सूट–बूट खरीद रहे हैं, पान–सिगरेट ही नहीं, विदेशी शराब भी पी रहे हैं और जनता के बीच नशापन के विरोध में लेक्चर झाड़ रहे हैं। कामरेड बासदेव ऐसे नेताओं का उदाहरण है। गरीबों की लड़ाई, किसान–मजदूरों की लड़ाई के अगुआ का चारित्रिक पतन इस हद तक हो गया है। सोमा जट, चलित्तर कर्मकार जैसे डकैत लोग पार्टी को बन्दूक, पेस्तौल [21], चन्दे की राशि [22] आदि जरूरत के सामान देते हैं। पार्टी इनके सामने नतमस्तक है। इन पर पार्टी की प्रतिष्ठा को धूल में मिलाने का आरोप जब लगाया जाता है तब वे कहते हैं–''जिस समय सात सौ रुपैया का पुलिंग बाँधकर सिकरेटरी साहब को देने गये थे, उस दिन क्यों नहीं पूछा था कि चार दिन के भीतर कहाँ से इतना रुपैया वसूल हुआ?''[23] इसी तरह कालीचरन जैसे भावुक और सरल नौजवान की संवेदना को उभाड़कर पार्टी वाले उससे काम लेते हैं और बुरे दिन आने पर उसके लिए पार्टी का दरवाजा बन्द कर लेते हैं।

कम्यूनिस्ट पार्टी की स्थिति तो और भी बदतर है। एक तरफ राजनीति से कोसों दूर, अपने लैब और मरीजों के बीच रहने वाले डाक्टर प्रशान्त को कम्यूनिस्ट करार दिया गया है, मन गढंत आरोप लगा कर उसे जेल में डाल दिया गया है तो दूसरी तरफ चलित्तर कर्मकार जैसे डकैत के पक्ष में मेले में फारम बँटा है–''कम्यूनिस्ट पार्टी के लाल झंडा को बुलंदी से ढोनेवाले चलित्तर कर्मकार के ऊपर से वारंट हटाओं।'' [24] कम्यूनिस्ट पार्टी के लोग डकैतों के सहारे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद एवं साम्यवाद को प्रतिष्ठित कर रहे हैं, दुनिया के मजदूरों को एक कर रहे हैं। यह भारतीय राजनीति का अवमूल्यन है या उसका वास्तविक स्वरूप? इसका उत्तर तो 'मैला आँचल' के पात्र ही बखूबी दे रहे हैं। शायद इसीलिए रेणुजी ने पार्टी की राजनीति से तौबा कर ली थी।

साम्प्रदायिकता की प्राणवायु राजनीति है। राजनीति की हवा लगते ही साम्प्रदायिक भावना शोलों की तरह भड़क उठती है। साम्प्रदायिकता का खूनी खेल देश में 20वीं शताब्दी के पहले दशक से ही जारी है जो कभी लुकाछिपी के खेल के रूप में तो कभी ताण्डव नृत्य के रूप में आम जनजीवन को दहलाता रहा है। अन्तरिम सरकार बनने तक हम सुराज और स्वराज्य के निकट पहुँचे होते हैं तो साम्प्रदायिक शक्तियाँ भी विभाजन रेखा तक पहुँच गयी होती हैं। चूँकि मेरीगंज में मुसलमानों का एक घर भी नहीं है, इसलिए आलोच्य उपन्यास में साम्प्रदायिक गतिविधियों, दंगों का विस्तृत चित्रण नहीं हुआ है, किन्तु ज्यों ही देश के विभाजन और आजाद होने की खबर यहाँ पहुँचती है, लोगों के हृदय में दबी साम्प्रदायिक भावना व्यक्त होने लगती है; यथा–''....दिल्ली में बाँट बखरा करके सुराज मिल गया। जै! जै! इसलामपुर पाखिस्थान में रहेगा या हिन्दुस्थान में? पाखिस्थान में? अभी पाखिस्थान में मारे खुशी के खचाखच गोरू काट रहा होगा।.... धत् गोरू ने क्या बिगाड़ा है?..... बड़े भाग से मेरीगंज बच गया। दस मुसलमान भी होते तो पाखिस्थान लेकर ही छोड़ता।''[25]

देश–विभाजन के साथ हिन्दू–मुस्लिम दंगा होता है। ''.....दंगा हो रहा है। सुनते हैं कि दिल्ली, कलकत्ता, नखलौ, पटना सब जगह हिन्दू–मुसलमान में लड़ाई हो रही है। गाँव–के–गाँव साफ!''[26] इस खूनी जंग को रोकने के लिए महात्मा गाँधी नोआखाली में पैदल ही घूम रहे हैं। यह लोगों के बीच चर्चा का विषय है–''आजकल नूवाँखाली गये हैं। अभी बावनदास आया है पुरैनियाँ से। बोलता है कि गाँधीजी ने रामलाल बाबू को नूवाँखाली बुलाया है। गाँधीजी ने सिवनाथ चौधरीजी को चिट्ठी दिया कि सन् तीस में गाँधी आसरम में जो आदमी पुरैनियाँ से आया था, उसके नूवाँखाली भेज दो। रमैन पढ़ैगा।''[27]

जोतखी काका साम्प्रदायिक दंगों, चोरी–डकैती, हत्या, लूटपाट आदि घटनाओं को लेकर कुछ नहीं बोलते। ''उनकी राय है कि यह सब सिर्फ सुराज का नतीजा है।.... जिस बालक के जन्म लेते ही माँ को पक्षाघात हो गया और दूसरे दिन घर में आग लग गयी, वह आगे चलकर और क्या–क्या करेगा, देख लेना।''[28] और तो और कम्यूनिस्ट कहा जाने वाला चलित्तर करमकार सुराज की रात में ही हरखू तेली के घर पर डाका डालता है, हत्या करता है, लूटपाट करता है, सहुआइन से रात–भर पूड़ी छनवाता है। उधर दिन के उजाले में सुराज उत्सव में सोशलिस्ट पार्टी के लोग नारा लगाते हैं ''यह आजादी झूठी है। ''देस की जनता भूखी है।''[29] दूसरी ओर, आजादी–प्राप्ति के साढ़े पाँच महीने हुए ही थे कि गाँधी साम्प्रदायिक शक्तियों की गोलियों के शिकार हो जाते हैं। मेरीगंज के लोगों ने रेडियों से सुना के गाँधीजी का हत्यारा पकड़ा जा चुका है। लोगों की प्रतिक्रिया आती है–''आरे! कैसे नहीं पकड़ावेगा भाई! हाय रे पापी! साला.... जरूर जंगली देस का आदमी होगा। हत्यारा!.... मराठा? यह कौन जात है भाई! मारा ढा! अरे, बाभन कभी ऐसा काम नहीं कर सकता, जरूर वह साला चंडाल होगा।''[30]

साम्प्रदायिकता की तरह भारतीय राजनीति में जातिवाद और क्षेत्रवाद का जहर भरा हुआ है, इसलिए तुरत हत्यारे की जाति और क्षेत्रा की खोज होने लगती है, क्योंकि देश–प्रदेश की सरकारें बनाने के लिए संसद और विधान सभा के चुनावों में सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद जैसे विघातक तत्त्वों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः ऐसे तत्त्वों की संरक्षा राजनीतिक पार्टियों की अघोषित नीति बन गयी है। तभी तो

बावनदास कहता है–''नहीं बालदेव, छोटन बाबू–जैसे छोटे लोगों की बात जाने दो। यह बीमारी ऊपर से आयी है। यह पटनियाँ रोग है। .....अब तो और धूमधाम से फैलेगा। भूमिहार, राजपूत, कैथ, जादब, हरिजन, सब लड़ रहे हैं। ....अगले चुनाव में तिगुना मेले (एम.एल.ए) चुने जाएँगे। किसका आदमी ज्यादा चुना जाए, इसी की लड़ाई है। यदि रजपूत पाटी के लोग ज्यादा आये तो सबसे बड़ा मंतरी भी राजपूत होगा।''[31] यहाँ एक तथ्य उभड़कर सामने आया है कि पूरे उपन्यास में लेखक ने जिस तरह से हिन्दू समुदाय की ऊँची जातियों, पिछड़ी जातियों, दलित और आदिवासी जातियों की भीतरी संरचना, एक–दूसरे से प्रेम एवं घृणा, शोषण एवं पोषण का विदग्ध चित्रण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से किया है, वैसा मुस्लिम समुदाय का चित्रण करने से अपने को वैसे ही बचा लिया है जैसे कि हिन्दी के कई प्रगतिवादी और प्रगतिशील लेखक कहे जाने वाले अपने को बचाते रहे हैं। बावनदास पूर्वी पाकिस्तान में नहीं पहुँच पाता है और न वहाँ ले जान का लेखक का इरादा ही था, इसलिए उसे भारत–पाकिस्तान की सीमा पर ही तस्करों द्वारा मरबा दिया जाता है। उपन्यास का कोई भी पात्र मुस्लिम बहुल इलाके या गाँव में जैसे–तैसे जी रही मुस्लिम बिरादरी का, उनके अन्धविश्वास और धार्मिक रूढ़ियों का, अपनी ही बिरादरी के लोगों द्वारा जमीन और जोरू को हड़प लिये जाने का, पेट की आग बुझाने के लिए व्यभिचार की गोद में बैठने का, एक दस्तरखान पर बैठकर भी भिन्न–भिन्न खेमों में बँटकर जीने और मार–काट करने इत्यादि का न तो संस्मरण सुनाता है और न तो उनके बीच जाकर उनकी शोचनीय दशा का अवलोकन ही करता है। क्या ''मैला आँचल'' के चिथड़ों में कुछ भी जगह न पाने से यह बिरादरी उपेक्षिता नहीं रह गयी है या मुस्लिम समुदाय की वास्तविकता दर्शाने में कोई जोखिम थी? आखिर डाक्टर प्रशान्त के खूनवाले टेस्ट–ट्यूब का क्या होगा जिसे हाथ में लेकर ''वह जानना चाहता है, देखना चाहता है कि इन इंसानों और जानवरों की रक्तकणिका में कितना विभेद है, कितना सामंजस्य है।''[32] क्या मुसलमान इंसान और जानवर से भिन्न है। यदि नहीं, तो इंसान के रूप में देश उसका भी समान अधिकार है। अतः उस समुदाय की अच्छाइयों और बुराइयों का भी समान रूप से चित्रण होना चाहिए था।

निष्कर्षतः

यह कहा जा सकता है कि ''मैला आँचल'' में राजनीतिक दलों का टिड्डु दल शुरू से अन्त तक मँडराता रहता है, भिन्न–भिन्न दिशाओं से टूट पड़ता है और लाचार, अबोध किसान रूपी फसल को चटकर जाता है। उपन्यास के डाक्टर प्रशान्त के अनुसंधान का निष्कर्ष है कि ''मौजूदा सामाजिक न्याय–विधान ने इन्हें अपने सैकड़ों बाजुओं में जकड़ कर ऐसा लाचार कर रखा है कि ये चूँ तक नहीं कर सकते। ....फिर भी ये जीना चाहते हैं।''[32] लेकिन जेल से छूटकर डॉक्टर प्रशान्त नेपाल नहीं जाएगा। वहाँ भी 'नेपाल राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना हो चुकी है। ''नहीं, राजनीति में वह नहीं जाएगा। वह राजनीति के काबिल नहीं।''[34] यह दिगर बात है कि रेणुजी पार्टी भी छोड़ते हैं, नेपाल की मुक्ति सेना के सहयोगी भी बनते हैं और 1972 की बिहार विधान सभा के लिए निर्दलीय ही सही, चुनाव भी लड़ते हैं और आपातकाल में एंटी इंदिरा गतिविधियों में भाग लेने के काण जेल–यात्रा भी करते हैं।

वस्तुतः

गरीबों, मजलूमों, वंचितों, किसान और मजदूरों की जीने की विवशता पर राजनीतिक पार्टियाँ अपनी–अपनी गोटियाँ लाल करती रही हैं। राजनीतिक पार्टियों के बन्दर बाँट के खेल से लेखक दूर तो हो जाता है किन्तु उसकी राजनीतिक चेतना कुन्द नहीं होती। ''उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा''[35] की तर्ज पर उसका डाक्टर प्रशान्त आँसू से भीगीं हुई धरती पर, ग्रामवासिनी भारतमाता के मैले आँचल तले प्यार के पौधे लहलहाने का संकल्प लेता है जिसमें एक सृजनात्मक राजनीति की अनुगूँज सुनायी देती है।

संदर्भ

1. भारत यायावर (संपा.)–रेणु रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2012, मधुकर सिंह के साथ साक्षात्कार, पृष्ठ–418।
2. वही; पृष्ठ–419।
3. वही।
4. वही।
5. फणीश्वर नाथ 'रेणु': मैला आँचल; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; पेपर बैक्स पाँचवाँ संस्करण 1999 पृष्ठ–312।
6. वही; पृष्ठ–290।
7. वही; पृष्ठ–129।
8. वही।
9. वही।
10. वही; पृष्ठ–128।
11. वही; पृष्ठ–298।
12. वही; पृष्ठ–226।
13. वही; पृष्ठ–302–303।
14. वही; पृष्ठ–30।
15. वही; पृष्ठ–31।
16. वही; पृष्ठ–166।
17. वही; पृष्ठ–164–65।
18. वही; पृष्ठ–173।
19. वही; पृष्ठ–193।
20. वही; पृष्ठ–133।
21. वही; पृष्ठ–253।
22. वही; पृष्ठ–165।
23. वही; पृष्ठ–277।
24. वही; पृष्ठ–261।
25. वही; पृष्ठ–223।
26. वही; पृष्ठ–232।
27. वही; पृष्ठ–232।
28. वही।
29. वही; पृष्ठ–225।
30. वही; पृष्ठ–285।
31. वही; पृष्ठ–290।
32. वही; पृष्ठ–175।
33. वही; पृष्ठ–210।
34. वही; पृष्ठ–275।
35. भवभूतिः मालतीमाधवः 1:6।